ओ३म्

स्वल्प संशोधित

अद्वैत ब्रह्म

[मेरी उपनिषद्-भाष्य शैली]

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।
तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन, एतद्वै तत्॥

[कठोपनिषद् 6.1]

(ऊर्ध्वमूलः) जिसका मूल ऊर्ध्व है, इसका अर्थ प्रायः यह किया गया है कि जिसकी जड़ें ऊपर की ओर हैं, यह उचित नहीं है, हमें आर्ष ग्रन्थों को आर्ष दृष्टि से ही देखना चाहिए। यहाँ **'ऊर्ध्वः'** पद पर महर्षि यास्क का निर्वचन उद्धृत करते हैं- **'ऊर्ध्वमुद्धृतं भवति'** अर्थात् जो उत्कृष्टता से धारण किया हुआ होता है। निरुक्त के किसी अन्य संस्करण में यह पाठ इस प्रकार है, **'ऊर्ध्वमुच्छ्रितो भवति'** अर्थात् जो उत्कृष्टतापूर्वक आश्रित होता है। इसका अर्थ यह है कि जिसका मूल कारण पदार्थ किसी अन्य के द्वारा उत्कृष्टतापूर्वक धारण वा आश्रित हुआ होता है। अब **'मूलम्'** पद के निर्वचन पर विचार करते हैं- **'मूलं मोचनाद्वा मोषणाद्वा मोहनाद्वा'** **(निरुक्त 6.3)** अर्थात् जो अपने आधार से छुड़ाई जा सकती है, जो छिपी

रहती है तथा जो भ्रमित कर सकती है कि उसका विस्तार कहाँ तक है? जैसे वृक्ष की जड़ को धरती से उखाड़ा जा सकता है, वह भूमि में छिपी भी रहती है और वृक्ष के सभी गुणों को अपने में छिपाये भी रखती है तथा वृक्ष की जड़ें कहाँ तक फैली हैं, इसका ज्ञान भी सहज नहीं होता, इस कारण जड़ को मूल कहते हैं। जड़ ही वृक्ष का आधार भी होती है और उसे सतत पोषण भी प्रदान करती रहती है।



इस प्रकार इस जगत् को ऊर्ध्वमूल कहने का तात्पर्य है कि इसका मूल कारण प्रकृतिरूप पदार्थ ब्रह्म द्वारा उत्कृष्टता से धारण किया हुआ उसी में आश्रित भी होता है। यहाँ आगामी 'एषः' पद से जगत् का ग्रहण किया गया है, क्योंकि जगत् प्रत्यक्ष होता है। सम्पूर्ण जगत् की जड़ अथवा बीज यह प्रकृति पदार्थ ही है, जो प्रलय काल में ब्रह्म से क्रियाशीलता की दृष्टि

से पृथक् हो जाता है अर्थात् जब ब्रह्म से साक्षात् उत्पन्न '**ओम्**' रश्मियाँ अपना सम्पर्क अन्य रश्मि आदि पदार्थों से तोड़ देती हैं, तब जगत् की प्रलय उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार वृक्ष को जड़ से उखाड़कर धरती से पृथक् करने पर वह सूख जाता है। वह प्रकृति पदार्थ अपने अन्दर सत्व, रजस् व तमस् तीनों गुणों को छिपाये रखता है, जिनसे कालान्तर में सम्पूर्ण जगत् के नाना प्रकार के गुणों की उत्पत्ति होती है। यह प्रकृति पदार्थ सृष्टि के सूक्ष्मातिसूक्ष्म व विशालतम पदार्थों में ऐसा व्याप्त रहता है कि उसके विस्तार का किसी को पूर्ण बोध नहीं हो सकता। उल्लेखनीय है कि सृष्टि बनने में सम्पूर्ण मूल पदार्थ का उपयोग नहीं होता है, बल्कि वह पदार्थ प्रत्येक पदार्थ के साथ सदैव संश्लिष्ट रहकर उसे आधार प्रदान करता रहता है। इसके साथ ही सृष्टि की प्रत्येक क्रिया में आवश्यकता के अनुसार उपादान तत्त्व की पूर्ति भी करता रहता है। जिस प्रकार जड़ें भूमि से जल व खनिज लेकर वृक्ष का पोषण करती है, उसी प्रकार प्रकृति में उत्पन्न परा 'ओम्' रश्मियाँ सम्पूर्ण सृष्टि के निर्माण व संचालन में सतत अनिवार्य भूमिका निभाती हैं।

इन सब कारणों से ही जगत् को ऊर्ध्वमूल कहा है और वह मूल है– प्रकृति रूप पदार्थ। जब इससे एक चरण और आगे बढ़ें, तो प्रकृति का भी आधार ब्रह्म है, जिसकी चर्चा आगे की गयी है। ध्यातव्य है कि ब्रह्म प्रकृति का उपादान कारण नहीं है, वह केवल नियन्ता है।

(अवाक्शाखः) यह जगत् अवाक् शाखाओं वाला है। जिसका अर्थ प्रायः यही किया गया है कि जगत् नीचे गयी हुई शाखाओं वाला है। गीता 15.1 में '**अवाक्**' के स्थान पर '**अधः**' का प्रयोग है। यहाँ '**अवाक्**' पद में

‘**अव**’ उपसर्ग एवं ‘**अञ्चु गतौ याचने अव्यक्ते शब्दे च**’ धातु का प्रयोग है। ‘**अव**’ उपसर्ग को महर्षि यास्क ने निरुक्त 1.3 में विनिग्रह अर्थात् पकड़ने अर्थ में प्रयुक्त होना माना है। इस प्रकार ‘**अवाक्शाखः**’ पद का अर्थ है- जगत् की सभी शाखाएँ (सूक्ष्म कणों, रश्मियों से लेकर विशाल लोक-लोकान्तर तक जो आकाश में सोयी हुई वा विद्यमान हैं), उसी मूल प्रकृति पदार्थ वा ब्रह्म से साक्षात् उत्पन्न ‘**ओम्**’ रश्मियों के द्वारा संश्लिष्ट वा नियन्त्रित होकर ही सभी प्रकार की क्रियाएँ कर रही हैं। इसका अर्थ यह है कि सृष्टि का प्रत्येक सूक्ष्मतम से लेकर स्थूलतम पदार्थ प्रकृति पदार्थ के साथ संश्लिष्ट व ब्रह्म द्वारा नियन्त्रित है। सृष्टि के सभी पदार्थ नियन्त्रित बल और गति के साथ ही क्रियाशील रहते हैं। इसके साथ ही प्रत्येक पदार्थ से सूक्ष्म ध्वनियाँ भी उत्पन्न होती रहती हैं। उल्लेखनीय है कि ब्रह्म सभी जड़ पदार्थों को ‘**ओम्**’ रश्मियों के द्वारा ही विज्ञानपूर्वक गति व बल सतत प्रदान करता है। ‘**ओम्**’ रश्मियाँ अपने से स्थूल रश्मियों और वे रश्मियाँ अग्रिम चरण के सूक्ष्म पदार्थों को नियन्त्रित गति, दिशा व बल ब्रह्म के प्रयोजनानुसार प्रदान करती हैं। यदि ‘**अधः**’ पद पर भी विचार करें, तो इसका अर्थ ‘न धावति’ भी होता है। (देखे-निरुक्त 2.11) तब भी ‘**अधः शाखः**’ का अर्थ यही होगा कि जगत् में सभी पदार्थ अनियन्त्रित होकर भाग नहीं सकते हैं, बल्कि उन नियमों में ही बंधे हुए रहते हैं। यदि कोई ‘**अधः**’ का अर्थ निम्न ही माने, तब भी कोई बात नहीं है। सम्पूर्ण जगत् के सूक्ष्म से स्थूल तक सभी पदार्थ प्रकृति रूप पदार्थ से इसलिए निम्न हैं, क्योंकि वे प्रकृति पदार्थ के समान सबसे उत्कृष्ट व श्रेष्ठ पदार्थ परमात्मा के साक्षात् निकट नहीं होते हैं। उनकी ब्रह्म से जो भी निकटता होती है वह

प्रकृति पदार्थ के माध्यम से ही होती है। इसलिए प्रकृति से बनी सृष्टि के पदार्थ का स्थान प्रकृति पदार्थ से नीचे ही माना जाना चाहिए। ध्यान रहे '**शाखा**' पद अर्थ है- जो आकाश में सोयी वा फैली हुई रहती है। इसके लिए निरुक्त 1.4 देखना चाहिए। इसी के अनुसार वृक्ष की शाखा को शाखा इस कारण भी कहते हैं कि वे ही वृक्ष को सम्पूर्ण रूप देने में समर्थ होती हैं। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड के सभी कण व लोक आदि सभी पदार्थ शाखा इस कारण कहाते हैं कि ये ही जगत् को जगत् का स्वरूप वा आकार प्रदान करते हैं।

(एषः, अश्वत्थः) ऐसा यह प्रत्यक्ष जगत् अश्वत्थ रूप है। यहाँ '**अश्वत्थः**' पद के दो अर्थ ग्रहण किये जा सकते हैं- प्रथम प्रसिद्ध अर्थ है- **अ** + **श्वत्थः** अर्थात् जो कल स्थिर न रहे अर्थात् क्षणभंगुर। इसका अर्थ यह है कि जो भी सृष्टि है, वह अनित्य है, न कि अनादि व अविनाशी। इसका दूसरा अर्थ है- अश्व में स्थित। यहाँ '**अश्वः**' पद के विषय में ऋषियों केकुछ कथन उद्धृत करते हैं-

यजमानो वा अश्वः (तै.ब्रा.3.9.17.5),
इन्द्रो वा अश्वः (कौ.ब्रा.15.4)

अर्थात् यह जगत् बलवत्तम इन्द्ररूप ब्रह्म, जो सम्पूर्ण सृष्टि का यजमान है अर्थात् वही सभी प्रकार की सृजन, संयोजन आदि क्रियाओं का मूलकर्त्ता है, में स्थित है। ध्यातव्य है कि महर्षि यास्क ने इन्द्र को सभी बलों का कारण माना है और महर्षि याज्ञवल्क्य भी कहते है- इन्द्रो बलं बलपतिः (श.11.4.3.12)। इस कारण ब्रह्म का एक नाम इन्द्र भी है और इन्द्र होने

के कारण ही वह सृष्टि का यजमान है, इसी कारण कहा है- इन्द्रो वै यजमानः (श.2.1.2.11)। स्मरण रहे महाप्रलयकाल में परमात्मा यजमान नहीं रहता, जिससे प्रकृति के तीनों गुण शान्त अर्थात् साम्य वा प्रसुप्त रहते हैं। जैसे ही परमात्मा का यजमानत्व सक्रिय होता है, वैसे ही वह इन्द्र बनकर जगत् को बनाकर स्वयं में ही उसे धारण कर लेता है। इस कारण भी जगत् को अश्वत्थ कहा है। ध्यान रहे कि प्रलयकाल में परमात्मा भले ही यजमान रूप में कार्य नहीं करता, परन्तु वह प्रकृति पदार्थ की भाँति प्रसुप्त भी नहीं रहता, बल्कि सतत जाग्रत रहता है। वर्तमान भौतिकी की दृष्टि से सभी पदार्थ नाना प्रकार के बलों में ही अर्थात् उन्हीं के द्वारा स्थित होते हैं व अपने-अपने मार्गों पर गति करते हैं, परन्तु बलों के मूल कारण को वर्तमान विज्ञान नहीं जानता। वह नाना प्रकार के फील्ड्स को बलों का कारण मानता है परन्तु फील्ड और बल दोनों में कौन पहले है और जो पहले है, उसकी उत्पत्ति का मूल कारण क्या है, यह कोई नहीं जानता। वस्तुतः सभी बलों का मूल कारण चेतन तत्त्व परमात्मा ही है, जड़ पदार्थ में अपना कोई बल नहीं होता। सभी बलों का मूल कारण 'ओम्' रश्मि और इसका कारण ब्रह्म। इसी कारण यहाँ '**अश्वः**' पद का अर्थ हमने परमात्मा किया है और उसमें स्थित जगत् अश्वत्थ कहाता है। यह अश्वत्थ का दूसरा अर्थ है, प्रथम अर्थ अनित्य है, ही। बलों के गम्भीर विज्ञान को समझने के लिए '**वेद विज्ञान-आलोक**' अथवा '**परिचय वैदिक भौतिकी**' ग्रन्थ पठनीय हैं।

(सनातनः) ऐसा अनित्य जगत् सनातन भी कहा जाता है, क्योंकि प्रवाह से सृष्टि-प्रलय का चक्र अनादि व अनन्त है। स्मरणीय है कि '**सनातनः**'

पद से सृष्टि को अनादि नहीं माना जा सकता, क्योंकि इसका विशेषण '**अश्वत्थ**' इससे पूर्व विद्यमान है, जिससे इसका विरोध हो जायेगा। यदि '**सनातनः**' को ब्रह्म का विशेषण मानें, तब आगे ब्रह्म के लिए '**अमृतम्**' विशेषण पिष्टपेषण के समान निरर्थक हो जायेगा। इस कारण '**सनातनः**' विशेषण सृष्टि-प्रलय के प्रवाह के लिए ही प्रयुक्त मानना होगा। यदि '**अश्वत्थ**' का अर्थ केवल ब्रह्म में स्थित मानें, तो वह भी तर्कसंगत नहीं, क्योंकि सूक्ष्म पदार्थों के यजन से उत्पन्न कोई भी पदार्थ अनादि नहीं हो सकता। यहाँ गीता में '**सनातनः**' पद के स्थान पर '**अव्ययम्**' पद विद्यमान है और कहा है कि यह क्षणभंगुर जगत् अव्यय है। आद्य शंकराचार्य जी ने '**अव्यय**' पद का अर्थ अनादि किया है परन्तु इससे सृष्टि-प्रलय के प्रवाह को अनादि मानना चाहिए, सृष्टि को नहीं, अन्यथा '**अश्वत्थ**' पद से इसका विरोध हो जायेगा। क्योंकि क्षणभंगुर पदार्थ कभी अनादि नहीं हो सकता और अनादि पदार्थ कभी क्षणभंगुर नहीं हो सकता, जैसा कि कहा है- 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः, ध्रुवं जन्म मृतस्य च' (गीता)।

गीता में श्लोक का उत्तरार्ध यह है- 'छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्'। यहाँ आचार्य शंकर ने ऋक्, यजुः व साम लक्षणों वाले छन्दों को जगत् रूपी वृक्ष के पर्ण (पत्ते) कहा है। छन्द के निर्वचन में महर्षि यास्क का कथन है- 'छन्दांसि च्छादनात्' (निरु.7.12) जिस प्रकार वृक्ष को उसके पत्ते आच्छादित किये रहते हैं, वैसे ही छन्द रश्मियाँ सृष्टि के सभी पदार्थों को आच्छादित किये रहती हैं। जिस प्रकार वृक्ष में पत्ते वायु मण्डल से ऑक्सीजन व प्रकाश को लेकर सम्पूर्ण वृक्ष को पुष्ट करते हैं वैसे ही छन्द रश्मियाँ 'ओम्' रश्मियाँ के माध्यम से प्रकाश व बल आदि

गुणों को प्राप्त करके सम्पूर्ण जगत् को बल व गति आदि प्रदान करती हैं। वस्तुतः सम्पूर्ण सृष्टि छन्द रश्मियों के संघनन से ही बनी है। इस कारण भी छन्दों को पर्ण कहा है, क्योंकि ये ही सम्पूर्ण सृष्टि को पूर्णतः भरे हुए हैं। इसे हमने अपने 'वैदिक रश्मि सिद्धान्त' के रूप में 'वेद विज्ञान-आलोक' ग्रन्थ में विस्तार से समझाया है।

जगत् का वर्णन करने के पश्चात् उस ब्रह्म के गुणों की चर्चा करते हैं, जो गुण उस ब्रह्म में ही हैं, अन्य किसी में नहीं-

(तत्, एव) वह परोक्ष तत्त्व ब्रह्म ही **(शुक्रम्)** अत्यन्त शीघ्र क्रियाओं को करने वाला एवं सभी ज्योतियों का प्रकाशक है। वह ब्रह्म सर्वव्यापक होने से सर्वत्र एक साथ क्रियाओं को जन्म देने से शुक्र कहा गया है। जगत् की सभी क्रियाओं, बलों व प्रकाशादि गुणों के पीछे **'ओम्'** रश्मियाँ ही ओम् परमेश्वर के हस्तरूप हैं, जो सर्वत्र एक साथ क्रियाओं को जन्म देने में समर्थ होती हैं। **'एव'** पद स्पष्ट करता है कि ऐसा शीघ्रकारी व प्रकाशक पदार्थ केवल ब्रह्म ही है, अन्य कोई नहीं। इस सृष्टि में जो भी क्रियाएँ हो रही हैं, उनमें सर्वाधिक त्वरित क्रिया 'ओम्' रश्मि ही करती है, इसलिए वह ब्रह्म शुक्र कहलाता है। **(तत्, ब्रह्म)** उस परमात्मा को ब्रह्म भी कहते हैं, क्योंकि वह सबसे बड़ा है। वह विस्तार, बल, ज्ञान आदि सभी दृष्टि से अनन्त है, इस कारण उसे ब्रह्म कहते हैं।

(तत्, एव, अमृतम्, उच्यते) वह परमात्मा अविनाशी होने से अमृत कहाता है। उसका ज्ञान, बल व क्रिया सभी स्वाभाविक रूप से सर्वदा समान रूप से विद्यमान रहते हैं, जबकि दो अन्य नित्य सत्ताओं (प्रकृति व जीवात्मा) के गुणों में अन्तर आता रहता है। महाप्रलय में प्रकृति के सभी

तीनों गुण सो जाते हैं अर्थात् पूर्ण निष्क्रिय हो जाते हैं। बद्ध जीवात्मा भी प्रसुप्त अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। मुक्त आत्मा के ज्ञान, बल व क्रिया में भी मुक्त से बद्ध वा बद्ध से मुक्त अवस्था में जाने से भेद उत्पन्न होता रहता है। इस प्रकार केवल ईश्वर ही है, जिसमें अर्थात् जिसके गुणों में कोई अन्तर नहीं आता, भले ही वह उन गुणों का उपयोग करे वा न करे, इसी कारण इस प्रकरण में '**अमृतम्**' पद के साथ भी '**एव**' पद का प्रयोग किया गया है।

(तस्मिन्, लोकाः, श्रिताः, सर्वे) उस परमात्मा में ये सभी लोक आश्रित हैं। यहाँ लोक का अर्थ प्रकाशित लोक, अप्रकाशित लोक व आकाश के अतिरिक्त छन्द रश्मियों का भी ग्रहण करना चाहिए। इस विषय में ऋषियों का कथन है- छन्दांसि वै सर्वे लोकाः (जै.ब्रा.1.332), इमे वै लोकाः (मै.सं.3.7.10)। यहाँ '**इमे**' का अर्थ प्रत्यक्ष पृथिव्यादि तीन लोकों का ग्रहण करना चाहिए। पृथिवी का अर्थ अप्रकाशित लोक व कण, द्युलोक का अर्थ प्रकाशित लोक वा फोटोन तथा अन्तरिक्ष लोक का अर्थ आकाश अर्थात् आकाश महाभूत मानना चाहिए। इन सभी लोकों का अन्तिम आश्रय ईश्वर ही है, क्योंकि वह इन लोकों का मूल उपादान कारण प्रकृति का भी आश्रय है।

(तत्, उ, न, अति, एति, कश्चन) उस ब्रह्म का कोई भी पदार्थ अतिक्रमण नहीं कर सकता। विस्तार, गति, बल, ज्ञान आदि किसी के द्वारा भी सृष्टि का कोई भी उत्पन्न पदार्थ अथवा प्रकृति व जीव जैसा अनादि व अविनाशी पदार्थ ही उसका अतिक्रमण नहीं कर सकता। वह 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' अर्थात् सूक्ष्म से सूक्ष्म व महान् से महान् है। उससे बढ़कर

कोई नहीं, उसके समान भी कोई नहीं, इसीलिए वह अद्वितीय है, अद्वैत है। अद्वैत का अर्थ यह नहीं कि उसके अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ की कोई सत्ता ही नहीं, बल्कि इसका अर्थ यह है कि उसके समान कोई नहीं है। यदि कोई सत्ता होती ही नहीं, तो उसकी तुलना करने की न तो आवश्यकता होती और न ही कोई तुलना करने वाला होता, न ही उस पर कोई आश्रित होता और न ही वह किसी का आश्रय होता, न ही वह किसी का उपास्य होता और न ही उसका कोई उपासक होता। इसीलिए अन्य पदार्थों की सत्ता तो है, परन्तु वह ब्रह्म अपने अनुपम गुणों के कारण अद्वितीय है अर्थात् **वह ब्रह्म अद्वैत है।**

(एतत् वै तत्) यह उपर्युक्त गुणों से युक्त पदार्थ वह ब्रह्म ही है, अन्य कोई नहीं।

भावार्थ-

> यह जो प्रत्यक्ष जगत् है, उसका मूल उपादान कारण प्रकृति पदार्थ ब्रह्म द्वारा उत्कृष्टतापूर्वक धारण किया हुआ है। इसके साथ ही मूल प्रकृति पदार्थ सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ के भीतर-बाहर छिपा हुआ व मिला हुआ रहता है। सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ उस मूल प्रकृति की शाखाएँ हैं, जो ब्रह्म के द्वारा नियन्त्रित रहती हैं। यह नियन्त्रण ब्रह्म से साक्षात् उत्पन्न परा 'ओम्' रश्मियों के द्वारा होता है। परा 'ओम्' रश्मियाँ ईश्वर व सृष्टि के सभी पदार्थों के मध्य एक सेतु के समान हैं अथवा ये रश्मियाँ ही ब्रह्म के हाथ हैं। ऐसा यह जगत् सदैव नित्य परमात्मा में स्थित रहता है, परन्तु यह

अनित्य है। यहाँ यह भी कहा गया है कि यह जगत् सृष्टि-प्रलय के क्रम के रूप में सनातन है अर्थात् सृष्टि-प्रलय का प्रवाह सनातन है, नित्य है। उधर वह ब्रह्म सबका प्रकाशक, शीघ्रकारी, सबसे महान् अर्थात् विस्तार, बल, ज्ञानादि गुणों की दृष्टि से उसके समान कोई नहीं है। इसी कारण उसे अद्वैत कहा जाता है। यहाँ अद्वैत का यह अर्थ नहीं है कि उस ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ की सत्ता नहीं है, बल्कि उसके समान कोई सत्ता नहीं है। वह ब्रह्म नित्य वा अविनाशी है। उस ऐसे अनुपम ब्रह्म में ही सृष्टि के सभी लोक ठहरे हुए हैं। ऐसे गुणों वाला वह ब्रह्म ही है।

✍ आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

वैशाख शु. १०/२०८०, दिनांक 30.04.2023

जय माँ वेद भारती